भारत में उच्च शिक्षा की चुनौतियाँ: भौतिकी की दृष्टि से
The Challenges of Indian Higher Education: A View From Physics

टी.वी. रामकृष्णन् और शिवाजी सोंढी
T. V. Ramakrishnan and Shivaji Sondhi
9.14.09

यदि हम चाहते हैं कि भारत का आर्थिक विकास अपेक्षित तीव्र गति से भविष्य में भी होता रहे तो शिक्षित भारतीयों की तादाद में दिन-दूनी और रात-चौगुनी बढ़ोतरी करनी होगी. इसके लिए केवल उच्च शिक्षा का विस्तार ही पर्याप्त नहीं होगा,बल्कि भारत की उच्च शिक्षा में गुणात्मक सुधार भी लाना होगा. परंतु पूर्वेशिया और चीन की तुलना में भारत की वर्तमान प्रवृत्तियों को देखकर निराशा-सी होने लगती है और संशय होने लगता है कि ऐसा कभी हो पाएगा या नहीं.

नोबल पुरस्कार विजेता रॉबर्ट फ़ोजल ने अमरीकी आँकड़ों के आधार पर यह अनुमान लगाया है कि कॉलेज स्तर तक पढ़ने वाला कामगार तीन गुना अधिक उत्पादक क्षमता रखता है और हाई स्कूल का स्नातक कामगार के रूप में 1.8 गुना उत्पादक क्षमता रखता है. इन दोनों ही प्रकार के कामगारों की उत्पादक क्षमता नवीं कक्षा तक पढ़े हुए कामगार की तुलना में कम होती है. भारत के पास अपार युवाशक्ति है और अनुमान है कि अगले तीन दशकों में अंत:स्नातकीय कॉलेज की शिक्षा के लिए पात्र छात्रों की संख्या एक नियत समय पर कम से कम 100 मिलियन होगी. यदि वे समुचित रूप में शिक्षित होते हैं तो वे भारत को समृद्धि की राह पर ले जाएँगे. और अगर ऐसा नहीं होता तो भारत पर बोझ बन जाएँगे.

कम से कम इतना लक्ष्य तो रखा ही जा सकता है कि भारत की युवा शक्ति का एक छोटा-सा भाग अर्थात् पात्रता प्राप्त आबादी का लगभग 15 प्रतिशत भाग कॉलेज की शिक्षा प्राप्त कर ले. इसके लिए आज की तुलना में कम से कम दो गुना छात्रों को तेज़ी-से कॉलेज की शिक्षा देनी होगी. इससे उच्च शिक्षा के ढाँचे के आकार में लगभग 50 प्रतिशत की वृद्धि हो जाएगी, लेकिन यह चुनौती के आकार को कम करके आँकने जैसा ही होगा. इसका कारण यह है कि शिक्षा का वर्तमान संगठन निम्न स्तर का है. इसके भी दो कारण हैं : नौकरशाही के नियंत्रण में दबा दमघोंटू वातावरण और अच्छे अध्यापकों की कमी. हालांकि अध्यापकों की कमी का कारण तो यही है कि पिछले कुछ वर्षों से इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है. वस्तुत: भारत में प्रचलित विचित्र प्रकार की जातिव्यवस्था के समान आज उच्च शिक्षा में भी तिहरी प्रणाली है. एक प्रणाली के अंतर्गत अपेक्षाकृत छोटी संस्थाएँ हैं, जिनमें मुख्यत: अनुसंधान कार्य होता है, लेकिन

शिक्षण न के बराबर ही होता है. दूसरी प्रणाली के अंतर्गत विश्वविद्यालय आते हैं, जिनमें अधिकांशत: छात्र होते हैं और इनमें मुख्यत: स्नातक स्तर की कक्षाएँ होती हैं. तीसरी प्रणाली के अंतर्गत वे कॉलेज आते हैं, जिनमें छात्रों की संख्या और अधिक होती है और इनके अंतर्गत अंत:स्नातकीय कक्षाओं की पढ़ाई होती है. पहली प्रणाली में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की कक्षाएँ होती हैं और उनकी शिक्षा का स्तर भी बहुत ऊँचा होता है. उनके मूल्य और परंपराएँ भी अच्छी और ऊँची होती हैं, लेकिन पूरी प्रणाली में इनकी तादाद बहुत कम है. यह भी एक दु:खद सत्य है कि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (IITs) में बहुत कम ही ऐसा होता है कि वे भर्ती किए गए असाधारण योग्यता वाले तमाम छात्रों के साथ न्याय कर पाते हों. वस्तुत: उनके छात्र अपनी शिक्षा के स्तर का आकलन मोटे तौर पर इसी आधार पर कर लेते हैं कि इन संस्थाओं में प्रवेश के लिए जो जद्दोज़हद उन्होंने की, वही कदाचित् उनकी शिक्षा के ऊँचे स्तर का पहली नज़र में मापदंड है.

अब तक उच्च शिक्षा को एक ऐसे प्रशिक्षण के रूप में देखा जाता रहा है जो मोटे तौर पर अंत:स्नातकीय शिक्षा के लिए उपयुक्त होता है. परंतु अंतर्राष्ट्रीय अनुभव दर्शाता है कि इस प्रशिक्षण को अनुसंधान या ज्ञान के उत्पादक उद्यमों से अलग करके नहीं देखा जा सकता. कम से कम अध्यापकों को तो कम से कम स्वयं ही ऊँचे स्तर का प्रशिक्षण प्राप्त करना होगा. अंत:स्नातक यदि इस बारे में भी जागरूक हैं कि ज्ञान की सीमाएँ कहाँ तक फैली हुई हैं तो भी गनीमत है. स्वाभाविक रूप में यह तभी होता है जब उनके शिक्षक वे लोग होते हैं जो अनुसंधान संबंधी उद्यमों से जुड़े होते हैं. हमें यह अनुभव प्राप्त करने के लिए सबसे बढ़िया और होशियार शिक्षकों को जुटाना चाहिए. अंतत: ज्ञान के उत्पादन का असर "ज्ञान की अर्थव्यवस्था" शब्द में निहित आधुनिक अर्थव्यवस्था पर पड़ता है. उदाहरण के लिए आगे बढ़ते हुए भारत का सॉफ़्टवेयर उद्योग वैश्विक स्तर पर तभी अग्रणी हो सकता है जब भारत कंप्यूटर विज्ञान के चालीस पी एच.डी संबंधित विषयों में हर साल तैयार करे. अमरीका में हर साल 1,500 छात्र पीएच.डी करते हैं. भारत में यदि प्रशिक्षित कार्मिकों की कमी होगी तो कंप्यूटर विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी होने की गति भी धीमी पड़ती जाएगी.

निश्चय ही इन चुनौतियों का एहसास होने की प्रक्रिया में तेज़ी आ रही है. संघीय (केंद्र) सरकार ने 2005 और 2008 के बीच नई संस्थाओं के निर्माण और नए कानून बनाने के लिए काफ़ी निवेश करना शुरू कर दिया है और इस प्रक्रिया में और भी तेज़ी आने की संभावना है. उदाहरण के लिए इस अवधि में लगभग छह भारतीय वैज्ञानिक शिक्षा व अनुसंधान संस्थान (IISERs) और लगभग दस नए भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IITs)

स्थापित किए गए हैं. हाल ही में शिक्षा के अधिकार का एक ऐसा विधेयक भी पारित किया गया है, जिसमें शिक्षा को मूल संवैधानिक अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया है. इसके अलावा शिक्षकों के वेतन में भी भारी इजाफ़ा किया गया है. यह निश्चय ही प्रशंसनीय कदम है. जिस समग्र स्तर पर ये कदम उठाए गए हैं, वे भारत के इतिहास में आज़ादी के तुरंत बाद 1950 और 1960 के दशक में उठाए गए पहले कदम के बाद अप्रत्याशित हैं और इन्हें "राष्ट्र निर्माण की दूसरी लहर" माना जा सकता है. परंतु जिस पैमाने पर इनकी आवश्यकता है उसमें अभी भी बहुत कमी है. उदाहरण के लिए 1950 से लेकर अब तक भारत में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है. 1950 में जहाँ यह संख्या एक लाख थी और अब यह संख्या बढ़कर एक करोड़ तक पहुँच गई है. किंतु यह वृद्धि इस मद पर किए गए खर्च की तुलना में कुछ भी नहीं है. यदि इसमें 50 प्रतिशत वृद्धि भी होती है तो भी इस पर भारी खर्च आएगा. इससे यह पता चलता है कि इस समस्या के समाधान की दिशा में तभी कुछ प्रगति हो सकती है जब इसके लिए निजी संसाधन भी जुटाए जाएँगे.

लेकिन साथ ही उतनी ही गंभीर समस्या संस्थागत वातावरण तैयार करने की है,जिससे विशिष्ट संस्थाओं की सीमाओं के पार भी उत्कृष्टता लाने की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिलता है और वस्तुतः उन्हें आकाश छूने के लिए प्रेरित करता है. आज आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा संस्थाओं को पर्याप्त स्वायत्तता दी जाए. उन्हें छात्रों और संकाय सदस्यों को चुनने की और अधिक आज़ादी होनी चाहिए, अध्यापकों को अधिक वेतन देने की छूट होनी चाहिए और अपने मिशन को अधिकाधिक लाभान्वित करने के लिए सामान्यतः कामकाजी वातावरण तैयार करने की आज़ादी होनी चाहिए. प्रदर्शन योग्य उदाहरण के तौर पर इस मामले में निजी क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है. यदि विश्व-स्तर के कुछ निजी विश्वविद्यालय भारत में स्थापित हो जाएँ तो भारत की शिक्षा संस्थाओं को वैसे ही प्रोत्साहन मिलेगा जैसे इन्फ़ोसिस, विप्रो और टाटा कन्सल्टैन्सी सर्विसेस (TCS) से सूचना प्रौद्योगिकी के व्यापार को मिला है. अभी शिक्षा के क्षेत्र को मुक्त करने के लिए भारी कदम नहीं उठाए गए हैं, लेकिन यह देखकर उम्मीद ज़रूर बँधती है कि वर्तमान मानव संसाधन (HRD) मंत्री इस मामले पर गंभीरता से गौर कर रहे हैं.

ऐसी स्थिति में निराशा का स्वर भी उभरना चाहिए. संपूर्ण शिक्षा, विशेषकर उच्च शिक्षा कार्मिक उन्मुख कारोबार है. भारत के शिक्षा क्षेत्र में तीव्र वृद्धि लाने के लिए योग्य कार्मिकों की निरंतर सप्लाई आवश्यक है. .इस समय इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि उच्च स्तर के योग्य कार्मिकों की संख्या बढ़ रही है. खास तौर पर भौतिकी के क्षेत्र

में सर्वश्रेष्ठ भारतीय संस्थाओं में परंपरागत रूप में आने वाले अंतर्राष्ट्रीय स्तर के कार्मिकों की कम संख्या को देखकर लगता है कि इस क्षेत्र में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं हुआ है. अमरीका में इस बात के प्रमाण मिलने लगे हैं कि भारत में प्रशिक्षित होकर उच्च शिक्षा के लिए अमरीका आने वाले मेधावी भारतीय छात्रों में कमी आने लगी है. प्रिंस्टन में अभी हाल ही में आए भारतीय छात्रों ने अपनी अंत:स्नातकीय पढ़ाई भारत से बाहर रहकर ही की है और अब भारी संख्या में उनकी संख्या चीन से प्रशिक्षित होकर उच्च शिक्षा के लिए विदेश आने वाले चीनी छात्रों से भी कम होने लगी है. उदाहरण के लिए पिछले साल प्रिंस्टन ने भौतिकी के पीएच.डी कार्यक्रम में प्रवेश के लिए आठ चीनी छात्रों को ऑफ़र दी थी, जिनमें से पाँच छात्र चीन से ही प्रशिक्षण लेकर आए थे. किसी भारतीय छात्र को यह ऑफ़र नहीं दी गई. यह विषमता अब राष्ट्रीय अनुसंधान के उत्पादन-स्तर पर भी दिखाई पड़ने लगी है और जनसांख्यिकी की दृष्टि से पता लगता है कि यह विषमता आगे आने वाले वर्षों में और भी बढ़ेगी.

निष्पक्ष होकर यह देखा जा सकता है कि चीन ने आर्थिक सुधार की दिशा में अच्छी शुरुआत की थी और इस बात की संभावना है कि मेधावी भारतीय छात्र व्यापार से दूर होते चले जाएँगे . यह एक अच्छा लक्षण है. लेकिन यह भी एक तथ्य है कि इन प्रयासों पर भारत में अंत:स्नातकीय स्तर पर नामांकन में आई भारी वृद्धि का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है और दु:ख की बात तो यह है कि यह भारत में उच्च शिक्षा की शोचनीय स्थिति का भी परिचायक है.

भारत को निश्चय ही अंत:स्नातकीय और स्नातकीय शिक्षा के क्षेत्र में भारी विस्तार करते हुए आगे ही बढ़ते जाना है और विश्व-स्तर की शिक्षा की गुणवत्ता पर ज़ोर देना है. सार्वजनिक और निजी दोनों ही क्षेत्रों में भारी निवेश करके, मानसिकता में परिवर्तन लाकर और स्वाभाविक रूप में अंतर्निहित स्थानीय और वैश्विक क्षमता का दोहन करते हुए हम अगले पाँच से दस साल के बीच इसे वास्तविकता में परिणत कर सकते हैं.

टी.वी. रामकृष्णन् भौतिकी के एमिरेटस प्रोफ़ेसर और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, भारत में डीएई होमी भाभा प्रोफ़ेसर हैं.

शिवाजी सोंढी प्रिंस्टन विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में स्नातक अध्ययन के प्रोफ़ेसर और निदेशक हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@gmail.com>

.